श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्रजी

की

संक्षिप्त जीवनी और विचार-धारा

श्री चित्रनारायण लाल

प्रतिकृतिक

श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्रजी

की

संक्षिप्त जीवनी और विचार-धारा

श्री चित्रनारायण लाल
प्रतिऋत्विक

कृष्टिबान्धव पुस्तकमाला (हिन्दी)—३

प्रकाशक :

श्री विद्युत रंजन चक्रवर्त्ती
"विवेक-वितान"
पो० सत्संग ८१४११६
जिला—देवघर (बिहार)

प्रथम प्रकाश :

२५ दिसम्बर १९९७

मुद्रक :

धीरा प्रिन्टार्स, देवघर।

बान्धव-सहयोग—३ रुपये।

श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्रजी की संक्षिप्त जीवनी

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की बात है—जनगण का जीवन और चिन्तन-धारा अस्त-व्यस्त हो रही थी। एक ओर पराधीन भारतवासियों की अन्तर्वेदना तो दूसरी ओर मानवता-विरोधी, धर्म-विध्वंसी कार्य-कलापों की क्रमबद्धता प्रत्येक मनुष्य के जीवन को जटिल से जटिलतर बनाता जा रहा था। विश्व-परिस्थिति की इस प्रतिकूलता के मध्य कुछ शुभबुद्धि-प्रबुद्ध साधु सज्जन भी थे।

ऐसे ही साधु-सज्जनों में शिवचन्द्र चक्रवर्त्ती नामक एक ब्राह्मण थे जिनका उत्तर बंग पबना जिले के हिमायतपुर ग्राम में निवास था। बंगाल के अन्यान्य ग्रामों की भाँति हिमायतपुर ग्राम में भी हरित जंगलों का बाहुल्य था। आम, कटहल, बबूल, बाँस-इत्यादि गांव को घेरे ही रहते थे। पास ही में पवित्र पद्मा नदी बहती थी जो अपने जल से दोनों किनारों को आप्लावित करती रहती थी। गांव के आस-पास ही

धान एवं अनान्य हरे-भरे पौधों के खेत थे। पास ही में अनेक गाँव थे जैसे—काशीपुर, नाजीरपुर, छातनी, प्रतापपुर इत्यादि। हिमायतपुर की एक अपनी विशेषता थी। वह विशिष्टता यह कि पवना शहर से अढ़ाई मील की दूरी पर स्थित यह ग्राम शहरी जीवन की कृत्रिमता से जर्जरित नहीं था।

शिवचन्द्र चक्रवर्त्ती थे निष्ठावान, परोपकारी, कुशल-कौशली, शांडिल्य गोत्रीय वारेन्द्र श्रेणी के ब्राह्मण। उनकी पत्नी मनोमोहिनी देवी अत्यन्त ही निष्ठावती, स्वाध्वी रमणी थी। विवाह के पूर्व ही मनोमोहिनी देवी ने आगरा सत्संग के तत्कालीन संत-सद्‌गुरु हुजूरजी महाराज से स्वप्न में दीक्षा प्राप्त की थी। तब से भक्ति-परायण मनोमोहिनी देवी सांसारिक सभी कर्मों के बीच भी गुरु-प्रदत्त सत्‌मंत्र का अनुशीलन करती चलती थी। गुरुजनों के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी। लोक-सेवा, पारिपार्श्विक सेवा शिवचन्द्र-मनोमोहिनी को रोज लगी ही रहती थी। बहुत से लोग इनकी सेवा चर्य्या से परितृप्ति लाभ करते थे।

अंगरेजी १८८८ साल का १४ सितम्बर (१२९५ बंगाब्द का ३० भादो) शुक्रवार प्रातः ७ बजकर ५

मिनट में मनोमोहिनी देवी की प्रथम संतान भूमिष्ठ हुई। उस दिन शुक्लपक्ष की तालनवमी तिथि थी। परवर्त्ती काल में यही शिशु श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्र के रूप में संसार में परिचित हुआ।

कालक्रम से मनोमोहिनी देवी को कुछ और भी पुत्र और पुत्रियाँ हुये उनमें मध्यम पुत्र प्रभाषचन्द्र, कनिष्ठ कुमुदरंजन परलोक सिधार गये। सबसे छोटी कन्या गुरुप्रसादी वर्त्तमान हैं।

अत्यन्त शैशवकाल से ही अनुकूलचन्द्र में लोकोत्तर दिव्य चेतना का एक विशेष प्रकाश परिलक्षित होता था। उनके मनोमुग्धकर आचरण, अनन्त प्रेम और अपार करुणा में जो ही आते वे ही भगवत्‌ भाव से उद्‌बुद्ध हो उठते थे। उनकी गुरुजनों के प्रति श्रद्धा, दीन दुखियों के प्रति ममत्व बोध, गंभीर जिज्ञासा, लोकसेवा, उदार मनोभाव एवं बन्धु-वात्सल्य उन्हें अपने वयस्कों के प्रति वरणीय बना देते थे। बन्धुगण उन्हें "राजा भाई" कहकर सम्बोधन करते थे किन्तु माता के प्रति उनका एक दुर्दमनीय आकर्षण था जो उनके और सभी गुणों को दबाये रखता था। परवर्त्ती काल में माता मनोमोहिनी ने ही परम सत्‌

सरकार साहब से अनुमति लेकर इन्हें दीक्षा दी।

अनुकूलचन्द्र के शिक्षा-जीवन का आरम्भ हुआ स्थानीय पवना इन्स्टीच्यूट से ही। बाद में चौबीस परगना के नेहाटी महेन्द्रनाथ स्कूल से ये प्रवेशिका के लिये निर्वाचित हुये। किन्तु उसी समय उनके एक सहपाठी ने रोते-रोते उन्हें कहा कि मैं परीक्षा फीस के लिये रुपयों का जोगार नहीं कर पा रहा हूँ। बन्धु-वत्सल अनुकूलचन्द्र ने तत्क्षण ही अपने फीस का रुपया उसे दे दिया। इस प्रकार उनके स्कूलजीवन की परिसमाप्ति हुई।

पितामाता की इच्छा से १८ वर्ष की उम्र में बंगला १३१३ साल के २८ श्रावण को पवना शहर निवासी धोपादह ग्राम के रामगोपाल भट्टाचार्य महाशय की ज्येष्ठा कन्या एकादश वर्षीया षोड़शीवाला देवी के साथ अनुकूलचन्द्र का शुभ परिणय हुआ। षोड़शी-वाला की स्वामीभक्ति और उसी के साथ निष्ठा, सेवा, प्रेरणा, दया, दाक्षिण्य आदि प्रत्येक नारी के लिये अनुकरणीय है। कालक्रम में उनके गर्भ से प्रथम दो पुत्र यथाक्रम अमरेन्द्रनाथ एवं विवेकरंजन तथा बाद में दो कन्या साधना देवी एवं सांत्वना देवी ने जन्म

किया। पीछे चलकर अनुकूलचन्द्र के पचास वर्ष के अधिक उम्र में कुछ महिलाओं ने उन्हें पति के रूप में ग्रहण करने की कामना माता मनोमोहिनी के निकट प्रकट की। माता मनोमोहिनी ने उन्हें इस संकल्प से निवृत करने का प्रयास किया लेकिन अन्त में उनके संकल्प की दृढ़ता देखकर अनुकूलचन्द्र को उन्हें ग्रहण करने का आदेश दिया। मातृभक्त अनुकूलचन्द्र ने माता की आज्ञा से उन्हें ग्रहण किया। ऐसी ही महिलाओं में उनकी सहधर्मिणी षोड़शीवाला की कनिष्ठा बहन सर्वमंगला भी हैं। सर्वमंगला देवी के गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न हुये उनमें ज्येष्ठ तो प्रसूति गृह में स्वर्ग सिधार गये। कनिष्ठ प्रचेतारंजन वर्त्तमान हैं। श्रीश्रीठाकुर की असवर्णा स्त्री पारुलबाला देवी के गर्भ से अनुका देवी का जन्म हुआ।

जो हो, षोड़शीवाला देवी के साथ विवाह के कुछ दिन बाद ही अनुकूलचन्द्र कलकत्ता के नेशनल मेडिकल स्कूल में भर्त्ती हुये। इसीकाल में उन्हें कठोर दरिद्रता के साथ संग्राम करना पड़ा। माता मनोमोहिनी द्वारा भेजे गये सामान्य अर्थ से वहाँ खर्च चलना असम्भव था। बाध्य होकर कलकत्ता के ग्रे स्ट्रीट में

जोगेन भट्टाचार्य के कोयला के गोदाम में उन्हें कुलियों के साथ बहुत दिन बिताना पड़ा। किसी-किसी दिन तो पैसे के अभाव में उन्हें रास्ते के कल का जल पीकर एवं फूटपाथ पर सोकर समय गुजारना पड़ता था। असीम धैर्य के साथ अनेक कष्टों को सहकर अनुकूलचन्द्र ने डाक्टरी पढ़ना समाप्त किया। इसी कालेज के एक अध्यापक डाक्टर शशिभूषण मित्र ने परवर्ती काल में अपने इस छात्र में ईश्वरीय विभूति की अभिव्यक्ति देखकर उन्हें गुरु रूप में वरण किया।

डाक्टरी पढ़ने के बाद अनुकूलचन्द्र ने अपने ग्राम हिमायतपुर को केन्द्र बनाकर चिकित्सा-कार्य आरम्भ किया। उनकी रोग-निर्णय की अपूर्व क्षमता, सस्नेह रोगी परिचर्या, अभ्रान्त व्यवस्था पत्र, दान और अपार दया दाक्षिण्य की गुणावली चतुर्दिक प्रसारित होने लगी। केवल साधारण रोग ही नहीं अनेक दुरारोग्य व्याधि को भी वे अनायास ही निरामय कर डालते थे जिससे लोगों को धारणा हो गई थी कि अनुकूलचन्द्र निश्चय ही ईश्वरीय क्षमता का अधिकारी है। दूर-दूर से भी रोगी उनके यहाँ आते थे।

किन्तु केवल इसी चिकित्सा कार्य में ही वे अपने

को अधिक समय तक सीमाबद्ध नहीं रख सके। उन्होंने देखा, मन की उपयुक्त चिकित्सा नहीं होने पर मनुष्य को सर्वांगीण भाव से स्वस्थ नहीं बनाया जा सकता है। मनुष्य के सभी दुखों का कारण प्रवृत्ति-परायणता है। प्रवृत्ति के आकर्षण से उसे मुक्त कर सकने पर ही वह स्वाभाविक रूप से सुस्थ, स्वस्थ हो सकता है, शान्ति लाभ कर सकता है। इसी उद्देश्य से उन्होंने कुछ संगी-साथियों को लेकर महा संकीर्त्तन का प्रवर्त्तन किया।

आरम्भ हुआ कीर्त्तन का युग। उनके जीवन के इस तीव्र भावोन्मादनामय अध्याय में जो उनके सहयोगी थे उनमें कुछ विशिष्ट व्यक्ति थे—किशोरी मोहन दास, अनन्तनाथ राय, दुर्गानाथ सन्याल, नफर घोष, कोकन बुने आदि। कालक्रम से कीर्त्तन में योगदान दिया प्रभुपाद अद्वैत वंश के सतीशचन्द्र गोस्वामी एवं सुशीलचन्द्र बसु आदि प्रमुख भक्तवृन्द ने। इस अपूर्व कीर्त्तन का वर्णन भाषा में करना बिल्कुल असम्भव है। दीर्घ गौर वर्ण, सुगठित शरीर, आजानुलम्बित बाहु, आकर्ण विस्तृत चक्षु, किंचित घुँघराले बाल, प्रफुल्ल बदन-मंडल में प्रकटित अभय मुद्रा, शुभ्र उपवीत और

वसन-भूषण—इस प्रकार अनुकूलचन्द्र सपार्षद जिसने कीर्त्तन में देखा वह धन्य हो गया। इस समय से अनुकूलचन्द्र लोगों के द्वारा श्रीश्रीठाकुर नाम से आख्यायित होने लगे।

जब कीर्त्तन चलता रहता था तो कभी-कभी उसके बीच-बीच में श्रीश्रीठाकुर की भाव समाधि होती थी। ऐसी अवस्था में कभी-कभी देह प्रचण्ड तप्त हो उठता था तो कभी बर्फ के समान शीतल हो जाता था। उस समय वे भाव समाधि में लीन हो जाते थे। प्रायः देह में प्राणों का स्पन्दन नहीं मालूम पड़ता था। उस समय अनायास ही विचित्र प्रकार के अनेक आसन द्रुत वेग से होते रहते थे। कभी देह बहुत ऊँचा उठकर पुनः धरती पर गिर जाता। देह के प्रत्येक रोम कूप से रक्त निकलने लगता था। धीरे-धीरे समस्त स्पन्दन बन्द होकर देह में मृत्यु के लक्षण दिखाई पड़ते। परन्तु उस समय उनका वदन-मंडल विकम्पित और ज्योति विभासित हो उठता एवं श्रीमुख से धारा प्रवाह निकलने लगती विश्व रहस्य, साधन-भजन, एसी स्वरूप-आख्यान सम्बन्धी अनेकानेक वाणी। इनमें वहाँ उपस्थित कई भक्तजनों के अनेक

दुरुह प्रश्नों के उत्तर भी रहते। ये वाणियाँ बंगला, अंग्रेजी, संस्कृत एवं अन्यान्य कई भाषाओं में निर्गत होती, उनमें बंगला, अंग्रेजी और संस्कृत भाषा की वाणियों को पबना शहर के वकील वृन्दावन अधिकारी जी के परामर्श से लिपिबद्ध किया गया। वही पीछे चलकर पुण्य-पोथी के नाम से ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित हुआ।

बंगला १३१६ साल में अनुकूलचन्द्र भट्टाचार्य नाम के एक भक्त के प्रार्थना करने पर श्रीश्रीठाकुर ने एक रात में उनके लिये कुछ उपदेश अपने हाथ से लिख दिया। कालान्तर में वे उपदेश समूह पुस्तकाकार में 'सत्यानुसरण' नाम से प्रकाशित हुये।

श्रीश्रीठाकुर की संकीर्त्तन लीला, महाभाव समाधि और अमिय वाणियों की गाथा दिग-दिगन्त में प्रचारित होने लगी। भारत के तथा भारत से बाहर के देशों से अनेकों भक्त और जिज्ञासु नरनारियाँ मधुलोभी भौंरों की तरह उनके पवित्र सान्निध्य में उपस्थित होने लगे।

भक्त-समागम के साथ-साथ प्रयोजनों की पूर्त्ति के लिये सुदूर बंगला मॉव में श्रीश्रीठाकुर को केन्द्र करके अनेक

कर्म प्रतिष्ठान यथा स्कूल, कालेज, अस्पताल, कलाकेन्द्र और तरह-तरह के कुटीर शिल्प एवं विश्व विज्ञान केन्द्र आदि उद्भिन्न हो उठे। भक्तमंडली और अनुरागीवृन्द इस आश्रम को "श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्र आश्रम" कहते थे। पीछे माता मनोमोहिनी देवी की ईच्छा के अनुसार इस आश्रम का नाम "पवना सत्संग आश्रम" हुआ।

बंगला १३३० साल के २४ अगहन को श्रीश्रीठाकुर के पिता श्री शिवचन्द्र चक्रवर्त्ती ने दिव्य धाम की यात्रा की।

इस प्रचण्ड शोक के समय भी श्रीश्रीठाकुर मनुष्यों की सेवा परिचर्या से विरत नहीं हुये। पथ-भ्रान्त को उचित मार्ग-दर्शन देते रहे। अजश्र वाणी एवं कथोपकथन के माध्यम से उन्होंने अपने आदर्श को संसार के सामने रखा मानो शंख की गम्भीर ध्वनि में उन्होंने घोषणा की "ईश्वर एक है, धर्म एक है, प्रेरितगण उस एक के ही वार्त्ताविाहक हैं।"

उन्होंने संसार के समग्र मनुष्य जाति को पूर्वतनों के प्रति श्रद्धाशील रहकर वर्त्तमान पुरुषोत्तम में आनत होने का संदेश दिया। प्रवर्तन किया—यजन, याजन

एवं इष्टभृति का महाविधान। वर्णाश्रम एवं वैधी विवाह के परिपालन द्वारा समाज तथा राष्ट्र को सुविन्यस्त करने का निर्देश दिया।

आरम्भ हुआ जीवन का चर्यामुखर उद्बोधन, मरण की मृत्यु के लिए कठोर अभियान। युगोपयोगी भाषा में श्रीश्रीठाकुर ने धर्म की संज्ञा दी—"ये नात्मन्स्तथान्येषाम् जीवनं वर्द्धनं चापिप्रियते स धर्मः"। अर्थात् जिससे सपरिवेश अपना एवं दूसरों का जीवन विधृत होता है वही धर्म है।

इस आदर्श को सभी दिशाओं में संचारित करने के लिये उन्होंने सृष्टि की ऋत्विक, अध्वर्यु और याजक समूह। ऋत्विक संघ के नेतृत्व में शुरु हुआ बचने बढ़ने का दिव्य आन्दोलन। प्रत्येक व्यक्ति इष्टकेन्द्रिक साधन भजन के द्वारा अपने अन्तरस्थ शान्ति-उत्स का संधान पाकर सुनियन्त्रित होने लगा। साथ ही साथ जो असत् है उसे परित्याग करने की साधना में वह दुर्दम हो उठा। एकादर्श-विधृत पारस्परिकता के साथ वर्णाश्रम-भित्तिक समाज संगठन के लिये दृढ़वती हो गया।

किन्तु श्रीश्रीठाकुर के इन सारे क्रिया कलाप का

मुख्य उद्देश्य हुआ लोक संग्रह—कुछ विशुद्ध लोगों को तैयार करना जो अपने जीवन और चरित्र में वहन करते हुये चलेंगे उनका आदर्शवाद, मूर्त करेंगे एक-एक कर उनकी सारी ईच्छाओं को।

१३४४ साल ६ चैत्र को माता मनोमोहिनी देवी परलोक सिधार गयीं। मातृगत-प्राण श्रीश्रीठाकुर के जीवन में इस बिरह से मर्मभेदी व्यथा की सृष्टि की जिससे वे अपने सम्पूर्ण जीवन में माता की स्मृति एवं विरह जन्य दुःसह दुख को बार-बार व्यक्त करते रहे।

माँ के खोने का कष्ट हृदय में रहने पर भी श्रीश्रीठाकुर के लोक-कल्याणी महायज्ञ में किसी प्रकार की शिथिलता नहीं देखी गयी। जिनका आविर्भाव ही हुआ है विश्व के कल्याण के लिये उन्हें कोई भी अभिभूति ग्रस्त ही कैसे कर सकती है? वे हैं चिर अच्युत।

अंग्रेजी १९४६ साल के पहली सितम्बर के एक आँधीयुक्त वर्षा के दिन चिकित्सकों के परामर्श से वायु परिवर्त्तन के लिये श्रीश्रीठाकुर सपरिवार बिहार के संथाल परगने के देवघर वैद्यनाथधाम के उद्देश्य से

रवाना हुये। इस यात्रा में कुछ भक्तगण भी उनके साथ आये। दुर्भाग्यवश १९४७ साल के १५ अगस्त को भारत विभाजन के फलस्वरुप पबना जिला पाकिस्तान में सम्मिलित हो गया। हिमायतपुर में श्रीश्रीठाकुर के अरबों की सम्पत्ति थी जिसे तत्कालीन पाकिस्तान सरकार ने सरकारी सम्पत्ति रूप से घोषणा की। तब से देवघर में पुनः नये सिरे से निर्माण कार्य शुरु हुआ।

देवघर के उस व्यापक कर्मयज्ञ ने जाति धर्म निरपेक्ष उत्तर पश्चिम एवं दक्षिण भारत के तथा प्राच्य एवं पाश्चात्य बहुत से देशों के अनगिनत नर-नारियों को खींचकर उनके पवित्र चरण तल में लाया। एक विराट जन जागरण के स्पन्दन ने भारत के प्रत्येक प्रदेश तथा समीपवर्त्ती प्रदेश को स्पन्दित कर दिया। केवल भक्तगण ही नहीं, भारत और भारत के बाहर से भी बहुत से राजनैतिक नेता, शिक्षाविद शिल्पपति, दार्शनिक, साहित्यिक, चिकित्सक आदि मनीषियों ने श्रीश्रीठाकुर के सान्निध्य में वर्त्तमान परिस्थिति में करनीय विषयों के सम्बन्ध में आलोचना की है और उद्‌बुद्ध होकर अनेक उनके द्वारा प्रवर्तित

सत्संग में दीक्षित हो गये हैं। श्रीश्रीठाकुर के साथ दीर्घकाल तक इस प्रकार कथोपकथन का संकलन "आलोचना प्रसंगे" नामक ग्रन्थ में भक्तवर प्रफुल्ल कुमार दास ने किया है। इसी समय देवघर केन्द्र एवं अन्यान्य जगहों से भी श्रीश्रीठाकुर की वाणी एवं भावधारा को वहन करती हुई अनेक पत्र-पत्रिकाएँ विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित होने लगी है।

कृष्ण प्रसन्न भट्टाचार्य, सुशीलचन्द्र बसु, पंचानन सरकार, खलिलुर रहमान, प्रफुल्ल कुमार दास, अश्विनी कुमार विश्वास, देवी प्रसाद मुखोपाध्याय आदि प्रमुख भक्तवृन्द पावना और देवघर में विभिन्न समय में परम प्रेममय श्रीश्रीठाकुर की वाणियों एवं कथोपकथन के अनुलेखन कार्य में व्यापृत थे। श्रीश्रीठाकुर कथित इस सुविपुल साहित्यिक सामग्री में कुछ ग्रन्थों के नाम हैं—नाना प्रसंगे, इस्लाम प्रसंगे, कथा प्रसंगे, नारीर पथे, नारीर नीति, चलार साथी, अनुश्रुति, अमिय वाणी, The Message, Magna Dicta, आलोचना प्रसंगे, दीपरक्षी, धृति विधायना, विज्ञान विभूति, आदर्श विनायक, विधान विनायक, समाज संदीपना आदि। इसके अलावे और बहुत से ग्रन्थों में परम दयाल

श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्र ने संसार की सर्वविध समस्या का अमिय समाधान वाणियों के द्वारा अकृपण भाव से किया है।

अन्त में आया १९६९ साल का वह विध्वंसकारी २७ जनवरी। विश्वप्रकृति मौन एवं म्लानमुख से असहाय होकर माघ मास शुक्लपक्ष की नवमी तिथि के उस निष्ठुर क्षण की प्रतिक्षा करने लगी। प्रत्युषाकाल के ४ बजकर ४५ मिनट में परमदयाल, परम रक्षक, निखिल क्षेम विधाता, विश्वजन के प्राणों के प्राण श्रीश्रीठाकुर ने लाखों कण्ठों के हृदय विदारी हाहाकार के बीच इस बार की अपनी मर्त्यलीला का सम्वरण किया।

इसके दो वर्षों के बाद ही १९७१ साल के १० मई को परमाराध्या जगत जननी श्रीश्रीलक्ष्मी माँ षोड़शीवाला का भी महाप्रयाण हो गया।

अनुरागी एवं भक्तवृन्दों के उद्देश्य से श्रीश्रीठाकुर ने कहा—हमारी सारी भावधारा छड़ा (पद्य) और गद्य में लिखी है। हमें तो ऐसा लगता है कि हमारे नहीं रहने पर भी मनुष्य हमारे साथ बात कर सकेंगे। तुम सभी हमारे हाथ-पैर हो। तुम ही लोगों के

माध्यम से हमें सर्वत्र घूमने की इच्छा होती है।

अकपट भाव से इष्ट में सुनिष्ठ होकर उनकी नीति विधियों के परिपालन से मनुष्य जाति का शुभ लग्न उपस्थित होगा। व्यष्टिगत एवं समष्टिगत भाव से मनुष्य स्वस्ति एवं शान्ति का अधिकारी होगा, पृथ्वी पर उतर आयगा सुदिन।

परम प्रेममय श्रीश्रीठाकुर ने जीवों के प्रति करुणावश इस धराधाम पर अवतीर्ण होकर लोक-कल्याण के लिये बहुत से क्लेशों को स्वीकार किया। उनके लाखों उपदेश के बीच एक ही उपदेश है—"अच्युत इष्टनिष्ठ होओ"। वे बार-बार कहते थे—"मैं तुम्हारे बीच बचा रहना चाहता हूं"। आज केवल यही बात सामने आती है कि उनके नराकार में उपस्थित रहने पर एवं तिरोधान के पश्चात भी हमलोग क्या उनके छन्दानुवर्त्ती होकर उनमें प्रेम जगाने के लिये मनोज्ञ चाल से चल पा रहे हैं? तत्-सुख-सुखित्व अर्थात् उनके सुख में ही अपने को सुखी समझना भक्ति का प्राण है। (बंगला से अनुदित)

***

श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्रजी की विचार-धारा

आज की समस्याओं के भिन्न-भिन्न अंगों पर श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्र के जो विचार हैं उन्हें संक्षेप में नीचे दिया जाता है।

धर्म

आज संसार में धर्म की चिल्लाहट बहुत है। मन्दिर, मस्जिद की कमी नहीं है, पर जितने ही ये धार्मिक संस्थान हैं—ये सब मनुष्यों की समस्याओं को सुलझाने के विपरीत जटिलता की ही ओर ढकेल देने में व्यस्त हैं। तभी तो भिन्न-भिन्न तथाकथित धार्मिकों के बीच संघर्ष और द्वेष बढ़ता जा रहा है। कारण ये सभी धर्माचार्य प्रकृत धर्म के ज्ञान से शून्य हैं। युगपुरुष श्रीश्रीठाकुर ने धर्म की व्याख्या की है—

अन्ये बाँचाय निजे थाके
धर्म बले जानिस ताके।

अर्थात्, जिस प्रकार के चलन से हम परिवेश और अपने अस्तित्व को उन्नत कर सकें वही धर्म है।

इसके स्वरूप लक्षण के विषय में उनका कहना है—

धर्म सबाई बाँचे बाड़े
सम्प्रदायटा धर्म ना रे।

अर्थात्, प्रकृत धर्म के अनुशीलन से तो सभी का कल्याण होता है, उसमें किसी का विनाश नहीं होता है। हमलोगों का दोष यह है कि हमलोगों ने सम्प्रदाय को ही धर्म समझ लिया है। अतः अपने और संसार को बचाने के लिये प्रकृत धर्म का आश्रय लेना नितान्त आवश्यक है। यह प्रकृत धर्म मूर्त्त होता है युगपुरुष में। उनकी दिव्य दृष्टि के सामने सारी समस्याओं का कल्याणप्रसू समाधान रहता है। अतः हमारे जीवन में उस युगपुरुष की खोज करना और उनके चरण-प्रान्तों में अपनी सारी वृत्तिओं को समर्पित कर देना आवश्यक है।

जीवन्त आदर्श

जीवन्त आदर्श का अर्थ धर्म की विवेचना से स्पष्ट है। विश्व की सृष्टि में एक ऐसे महामानव की आवश्यकता अपरिहार्य है जिसमें संसार के सभी व्यक्ति अपने जीवन के प्रत्येक पहलू की समस्या का

समाधान पा सकें। जो ऐसे आश्रय को लेकर संसार में जीवन-यापन करता है वह प्रवृत्ति से अभिभूत नहीं होता। इसके विपरीत जिसका आदर्श काल्पनिक है वह अपनी वृत्ति को ही ईश्वर समझता है। संसार के हित के लिये ऐसे लोग बहुत ही खतरनाक होते हैं। इसीलिये पाश्चात्य विद्वान बरनार्ड शा ने कहा है—

Beware of the man whose god is in the sky.

कारण है ऐसे लोग अपनी गलती को छिपाने के लिये इसी काल्पनिक ईश्वर का सहारा लेते हैं। अतः हमारा आदर्श जीवन्त और समग्र दृष्टिसम्पन्न होना ही चाहिये।

एक बार एक अमेरीकन सज्जन ने श्रीश्रीठाकुर से कहा—

Thakur! I belong to that country where time is measured in terms of dollars. I have no time to discuss all these philosophical speculations. Please tell me in two words only what I should do.

अर्थात्, मैं उस देश का निवासी हूं जहाँ समय की बड़ी कीमत है। थोथे तर्क-वितर्क के लिये हमारे

पास समय नहीं है। केवल दो शब्दों में बतायें कि हमारे लिये करनीय क्या है ?

श्रीश्रीठाकुर ने हँसते हुये कहा—Be concentric. (सुकेन्द्रिक होओ)।

भद्र पुरुष ने फिर पूछा—तो हम जीवन का केन्द्र किसको बनावें ? क्या हेनरी फोर्ड को बनावें ?

श्रीश्रीठाकुर ने कहा—क्यों नहीं ? लेकिन तब तुम्हारा विकास हेनरी फोर्ड तक ही रहेगा। तुम प्रभु ईशा को नहीं प्राप्त कर सकते हो।

इष्ट-परायण जीवन और प्रवृत्ति-परायण जीवन की विशेषता का उल्लेख करते हुये श्रीश्रीठाकुर ने कहा है—

The fortunate follow their principal and are goaded thereby while the unfortunate follow their complexes as their principles

भाग्यशाली व्यक्ति अपने मूर्त्त आदर्श का अनुसरण करते है और उन्हीं से परिचालित होते हैं और भाग्यहीन अपनी वृत्तियों को ही अपना सिद्धान्त बनाकर विनाश की ओर परिचालित होते हैं।

वर्णाश्रम

वर्णाश्रम भारतीय आर्यों के व्यष्टिगत एवं समष्टिगत जीवन की व्यवस्था का मूल आधार रहा है। इसका महत्व इसी से आँका जा सकता कि आज तक इस भूतल पर अनेकानेक सभ्यतायें पनपी, विकसित हुई लेकिन अवैज्ञानिक आधार के कारण कराल काल के प्रचण्ड प्रवाह में ध्वस्त हो गई। किन्तु भारत का यह वर्णाश्रममूलक समाज और सभ्यता अभी तक भी कायम है। यह वर्णाश्रम मनुष्यकृत नहीं है बल्कि ईश्वर-कृत है जैसा कि गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागसः।

प्रत्येक मनुष्य जन्म के पूर्व से ही अपने माता-पिता से कुछ गुण और दोष आहरण करता है जो उसके जीवन में परिस्थिति के अनुकूल विकसित होते हैं। वर्णाश्रम का मूल उद्देश्य यही रहा है कि उचित विवाह द्वारा इन सहजात संस्कार की विशेषताओं को अधिक से अधिक विकसित किया जा सके।

अज्ञानता के कारण यह समाज बहुत कुछ अस्त-व्यस्त हो चुका है पर फिर भी इसको पुनरुज्जित करने का मार्ग खुला हुआ है। इस सम्बन्ध में

श्रीश्रीठाकुर ने कहा है—

"आदमी कोई भी धर्मावलम्बी क्यों न हो उसके वंश में प्रतिलोम सम्मिश्रण यदि नहीं हुआ है तो उसकी वंशानुक्रमिक जीविका, अभ्यास, आचार एवं व्यवहार अनुपातिक उसका वर्ण निरूपण करके वर्णाश्रम की नीति विधियों के अनुसार उसे परिचालित किया जा सकता है। वर्णाश्रम एक वैज्ञानिक विधान है। सार्वजनीन सहजात संस्कार अनुपातिक वृत्ति निर्वाचन, श्रेणी विन्यास एवं वैधी विवाह के द्वारा वंशानुक्रमिक वैशिष्ट्यों को धारावाहिकता में अक्षुण्ण रखते हुये वंश परम्परा को प्रगतिपन्न करा देना ही इसका मूल उद्देश्य है। इस पृथ्वी के प्रत्येक समाज को उसके वैशिष्ट्यानुसार यदि विधि-बद्ध भाव से सजा दिया जाये तो विहित अनुलोम क्रम से उनमें पारस्परिक विवाह बन्धन की भी सृष्टि की जा सकती है। पूर्वमान एकादश एवं अनुलोम विवाह जिस प्रकार किसी जाति को एक जुट कर डालता है उसी प्रकार वह समग्र विश्व को पारस्परिक वैशिष्ट्यानुग संहति के साथ संहत एवं ऐक्यबद्ध कर दे सकता है। परमपिता की दया से विश्व शान्ति का यह रहस्य जो उद्घाटित हुआ है

वह एक परम संयोग है। अभी से ही इस स्वर्गीय विधान को रूपायित करने के लिये आप सभी बद्ध-परिकर हो उठें—तभी होगा।"

विवाह का उल्लेख किया गया है। इस सम्बन्ध में भारतीय ऋषियों की मान्यता ध्यान देने योग्य है। विवाह साधारणतः दो प्रकार का हो सकता है एक वह जिसमें पुरुष सब प्रकार से अर्थात् वर्ण, वंश, विद्या, स्वास्थ्य, रूप, गुण इत्यादि में कन्या से श्रेष्ठ हों—ऐसे विवाह को अनुलोम विवाह कहा गया है। दूसरा वह जिसमें कन्या ही वर से सब प्रकार से (विशेषत वर्ण में) श्रेष्ठ हो—ऐसे विवाह को प्रतिलोम विवाह कहा जाता है।

शास्त्रों ने प्रतिलोम विवाह को निषिद्ध बतलाया है। कारण, ऐसे विवाह के फलस्वरूप कुजातकों का ही आविर्भाव होता है। यदि प्रतिलोमज संतान और अन्य सभी दृष्टियों से अच्छा भी दिख पड़े तो भी वह विध्वंसकारी ही होता है उसके जीवन में कृतघ्नता अनुस्यूत रहती है अतः वह विध्वंस कार्य में ही अपने को कृतकृत्य समझता है। लेकिन अनुलोम विवाह के फलस्वरूप प्रायः अच्छे जातकों की उत्पत्ति होती है

जो मंगलप्रसू कार्यों में ही अपने को लगाये रखते हैं।

वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार वृत्तिहरण महापाप है। अर्थात् अपने वर्णोचित वृत्ति के अनुसार ही मनुष्यों को जीविकोपार्जन करना चाहिये। इसमें कभी-कभी ऐसा भी होता है कि वर्णोचित क्षेत्र से बाहर किसी क्षेत्र में यदि कोई मनुष्य खूब उन्नत हो तो ऐसी अवस्था में वह संसार को क्या सेवा दे सकता है? श्रीश्रीठाकुर ने इस सम्बन्ध में कहा है—

"वर्णाश्रम व्यवस्था में सिर्फ आपद धर्म को छोड़कर आदमी अपनी जीविका के लिये अपने वर्णोचित कर्मों को छोड़कर अन्य दूसरे वर्णों के कार्यों को नहीं करेगा। अर्थात् दूसरे वर्णों के कार्यों को अपहरण नहीं करेगा। किन्तु दूसरे वर्णों के कार्यों को आदमी यदि अपनी जीविका का साधन नहीं बनाता है तो किसी भी प्रकार के कर्मानुशीलन में कोई बाधा नहीं है। ऐसे व्यक्ति जिनमें वर्णातीत कर्म की विशेष प्रतिभा है—वर्णोचित कर्म में भी वे प्रायः अपटु नहीं होते हैं। अपने वर्णोचित कर्म के द्वारा अपनी जीविका का आहरण करके ऐसे व्यक्ति बाद बाकी समय में अपनी प्रतिभा के स्फुरण को तदनुयायी लोक-सेवा के

कार्यों में लगा सकता है। किन्तु अपने इस वर्णातीत कार्यों के लिये वह पारिश्रमिक नहीं लेगा। हाँ! उसकी सेवा से प्रसन्न होकर कोई व्यक्ति यदि स्वतः-स्वेच्छ आग्रह से प्रीति-अवदान स्वरूप उसे कुछ देता है तो उस प्रीति-अवदान को ग्रहण करने में उसे कोई बाधा नहीं है। साथ ही उसके इस कार्य के लिये राष्ट्र की ओर से उसे कोई पुरस्कार यदि मिले तो उसे भी वह ग्रहण कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति यदि अपने वर्णोचित कर्म में निरत रहे, कोई यदि एक दूसरे का वृत्ति-हरण नहीं करे तो समाज में बेकारी की समस्या ही नहीं रहेगी और बिना मतलब की प्रतियोगिता भी बन्द हो जायेगी। आपस में पारस्परिक सहयोगिता एवं निर्भरशीलता का विकास होगा। और वंशपरम्परा से एक ही कार्य करते-करते प्रत्येक व्यक्ति की दक्षता एवं योग्यता भी बढ़ती जायेगी। प्रत्येक का अपने वर्णोचित कर्मानुशीलन के कारण समाज में सर्वतोमुखी सुन्दर उत्पादन एवं सेवापरिवेषण की एक स्वाभाविक व्यवस्था स्वतः ही प्रस्फुटित हो उठेगी। किसी वर्ण की विशिष्ट सेवा के अभाव में वह खुद तथा अन्यान्य दूसरे वर्ण भी अपुष्ट नहीं रहेंगे। सामाजिक शृंखला

अव्याहत भाव से दृढ़तर होती जायेगी। इसीलिये हमारे पिता-पितामहों ने, ऋषियों ने, महापुरुषों ने जीवन का जो विधान दिया है हम उसके मूल मर्म को समझने की चेष्ठा करें। अदूरदर्शिता एवं हीनत्व बुद्धि के कारण दुनिया में आज अनेकों आन्दोलन हो रहे हैं लेकिन इनसे समस्याओं का समाधान कुछ भी नहीं हो रहा है। समय हमारी पकड़ से बाहर होता जा रहा है और विश्व युद्ध की घनघटा बार-बार अनिवार्य होती जा रही है। सुसंगत व्यक्तिविज्ञान एवं समाज विज्ञान के माध्यम से ही इसका प्रतिकार सम्भव है और इसी विज्ञान का नाम है वर्णाश्रम। हमारे ऋषि महापुरुष ही इस प्राकृतिक वेद विज्ञान के द्रष्टा हैं, वे ही इसके आविष्कर्ता हैं तथा वे ही इसके प्रतिष्ठाता हैं।"

व्यक्तिगत जीवन का उन्नयन एवं सामाजिक जीवन की प्रगति के लिये आवश्यक है कि पुरुष का सवर्ण विवाह एवं असवर्ण अनुलोम विवाह वैधानिक ढंग से हो और वैधानिक ढंग से ही उनके द्वारा सन्तानोत्पादन का कार्य हो। प्रतिलोम विवाह तो सब प्रकार से निकृष्ट ही है। इस सम्बन्ध में श्रीश्रीठाकुर ने कहा है—

"पुरुष के अनुलोम असवर्ण विवाह एवं विशिष्ट गुणों से सम्पन्न व्यक्तियों के बहु-विवाह का एकान्त प्रयोजन है। कारण बहु-विवाह की प्रथा को प्रचलित करने से निकृष्ट पुरुषों को शादी करने के लिये लड़की नहीं मिलेगी। फलस्वरूप वे लोग दूसरे समाज या दूसरी जाति से लड़कियों के आहरण की चेष्टा करेंगे इससे समाज पुष्ट ही होगा। समाज में आत्मीकरण एवं आप्तीकरण की क्षमता भी बढ़ जायेगी।"

सुप्रजनन के लिये स्त्री और पुरुष दोनों को इसका विधान जानना आवश्यक है। इसको गर्भाधान संस्कार के अन्तर्गत ऋषि-मुनियों ने रखा है। इसके गुरुत्व पर ध्यान नहीं देने से सब कुछ अच्छा रहने पर भी दम्पति की भाव-भूमि की विकृति होने से अच्छी सन्तान का आविर्भाव नहीं होता। अतः विवाह के पूर्व ही दोनों को सुप्रजनन विज्ञान का ज्ञान चाहिये। इस संदर्भ में श्रीश्रीठाकुर ने कहा है—

"सबसे पहली बात यह है कि लड़कियों को अपनी वंश-मर्यादा एवं अपने आभिजात्य बोध के सम्बन्ध में सजग और सतर्क कर देना होगा। अपने इस गौरव बोध के प्रति लड़कियां इतनी सजग और सतर्क रहें

जिससे किसी निकृष्ट व्यक्ति के निकट आत्मदान करने की कल्पना भी उनके माथे में नहीं आने पावे। प्रतिलोम विवाह में फँस जाने के बाद वे लड़कियाँ मन ही मन कितनी नरक-यंत्रणा भुगतती हैं—मैंने इसका बहुत Confession (स्वीकारोक्ति) सुना है। पहले तो वे मोहवश किसी निम्नवंशीय पुरुष के प्रति आकृष्ट हो पड़ती है, किन्तु जिसी समय उसके साथ उपगत होना चाहती है उसी समय उसकी अन्तरात्मा चित्कार करने लगती है। उसके पूर्व पुरुषगण एकत्र होकर सर्वनाश-सर्वनाश कहकर आर्त्तनाद करने लगते हैं। यह कैसी भीषण यन्त्रणा है—कहा नहीं जा सकता। शब्दों के द्वारा कहकर इसे समझाया नहीं जा सकता। प्रतिलोमज सन्तान-सन्तति की कितनी दुर्गति होती है—यह तो आप जानते ही हैं। इसीलिये वास्तविक वैज्ञानिक तथ्यों को उद्‌घाटित करते हुये प्रतिलोम विवाह के विरुद्ध समाज में एक प्रचण्ड भय का वातावरण बना देना होगा। एक ऐसे वातावरण की सृष्टि करनी होगी जिससे प्रति प्रत्येक इस भीषण विध्वंस के प्रति सतर्क हो जाये तथा समाज में ऐसे आवहवा की सृष्टि करनी होगी जिससे श्रेय तथा इष्ट

से युक्त होने के लिये लोग व्यग्र हो उठें। साथ ही लड़कियों को यह अच्छी तरह समझा देना होगा कि श्रेयकुल संजात उपयुक्त स्वामी के प्राप्त होने पर भी किस प्रकार उनके मनोज्ञ चलन में चलना होगा तथा किस प्रकार अपने स्वामी की कुल-संस्कृति को एवं उनके व्यक्तिगत वैशिष्ट्य को सश्रद्ध सक्रिय सेवा द्वारा पुष्ट करते हुये चलना चाहिये। लड़कियों की शादी का अर्थ है जन्मान्तर अर्थात् पुनर्जन्म। कारण कि अपने स्वामी को लेकर उनके संसार को पाकर लड़कियाँ एक नया जीवन ग्रहण करती हैं। अपने स्वामी के समक्ष अपने इष्टानुग आचरण से लड़कियाँ जितना ही अपने को उत्सर्ग करती हैं—सुसन्तान प्राप्ति की सम्भावना उनमें उतनी ही अधिक रहती है।"

इस प्रकार इस समय संसार को बचने के लिये विविध समस्याओं का निदान श्रीश्रीठाकुर ने दिया है जिनमें वर्णाश्रम की प्रतिष्ठा, सुविवाह एवं सुप्रजनन मुख्य है। लेकिन इन सबों को पढ़ लेने से ही या जान लेने से ही कार्य नहीं होगा। इन सबों को सक्रिय रूप से अपने परिवेश में और अपने व्यक्तिगत जीवन में उतारना होगा। यदि संसार को बचाना है और

स्वयं भी बचना है तो वर्णधर्म के मौलिक तत्वों को सब प्रकार से ग्रहण करना ही होगा। नान्यः पन्था विद्यते।

आजकल नेतागिरी का जमाना है और नेता बनना हो लोग अपने जीवन की सार्थकता समझते हैं। अतएव जितने भी आन्दोलन हो रहे हैं उन सभी का आधार किसी-न-किसी रूप में राजनीति ही है। यद्यपि राजनीति का अर्थ श्रेष्ठनीति है और श्रेष्ठनीति का अर्थ इष्ट में अपने को समर्पित करना है। फिर भी इस शब्द का अपने ढंग से लोग व्यवहार किया करते हैं। एक बार श्रीश्रीठाकुर से पूछा गया कि—मनुष्य का परम पुरुषार्थ क्या है? श्रीश्रीठाकुर ने मुस्कुराते हुये उत्तर दिया कि—तुमने तो स्वयं ही इसका उत्तर दे दिया। प्रश्नकर्त्ता श्रीश्रीठाकुर की बात नहीं समझ सका और पुनः उन्हें स्पष्ट करने के लिये आग्रह किया। श्रीश्रीठाकुर ने कहा कि—तुमने परमपुरुषार्थ शब्द का प्रयोग किया है। अर्थात् मनुष्य का पुरुषार्थ है कि मनुष्य अपने जीवन को परम पुरुष के लिये उत्सर्ग कर दे। गीता में भगवान कृष्ण ने अपनी भक्ति के सन्दर्भ में इसी राजविद्या और राजगुह्य की चर्चा की

है। समाजवाद के साधारण अर्थ में ही श्रीश्रीठाकुर ने जो विचार प्रकट किये हैं वह मननीय है।

प्रश्न उठता है कि समाजवादी विचार धारा को माननेवाले व्यक्तिगत स्वामित्व को स्वीकार नहीं करते और व्यक्तिगत वैशिष्ट्य को भी उतनी मान्यता नहीं देते बल्कि परिवेश के प्रभाव पर ही वे लोग अधिक जोर देते हैं। इन प्रश्नों का समाधान करते हुये श्रीश्रीठाकुर ने कहा—

"अस्तित्व में बचने और उपभोग करने की इच्छा रहती है। किसी को उपभोग कराके उपभोग करना जीवन का धर्म है एवं इसी के माध्यम से अस्तित्व विवर्द्धन के राजपथ पर अग्रसर होना चाहता है। उसको छोड़कर उसकी कोई सार्थकता नहीं है। उसके सभी कर्म एवं अर्जन इसीलिये है कि जिनको उपभोग कराने के क्रम में आदमी एवं आदमी के पारिपार्श्विक के बचने और बढ़ने का प्रयोजन परिपूरित होता है—वही आदमी समाज के आदर्श होते हैं। नहीं तो जिसी-तिसी को खुश करने के क्रम में आदमी प्रवृत्ति का दास हो जाया है और उससे उसकी तथा उसके परिवेश की, दोनों की जीवन-वृद्धि क्षुण्ण होती है।

अतः वह विधान और व्यवस्था जो व्यक्ति और समाज के उन्नयन के लिये नहीं हो वह किस काम का ? इसीलिये ऐसी व्यवस्था करनी होगी, राष्ट्र को ऐसी भावधारा पर खड़ा करना होगा जिससे हमारे ऋषियों के द्वारा दिया गया वर्णाश्रम विधान अक्षुण्ण रह सके। वर्णाश्रम व्यक्ति वैशिष्ट्य एवं व्यक्ति-स्वातन्त्र्य को स्वीकार करता है। जन्मगत वैशिष्ट्यानुपातिक कर्म के द्वारा जीविका अर्जन इसकी एक मुख्य विशेषता है इसी लिये वृत्तिहरण वहाँ एक महापाप है। वैशिष्ट्य की यह धारा जिससे वंश-परम्परा में प्रवाहित रहे इसके लिए विधि के अनुसार विवाह होना चाहिये और द्रष्टा पुरुष के निकट उनसे ली गयी दीक्षा एवं आत्म-नियन्त्रणमूलक शिक्षा वर्णाश्रम की सबसे मुख्य बात है। इन सभी चीजों को यदि उचित ढंग से चलाया जाये वैसी हालत में धन-सम्पदा के ऊपर व्यक्तिगत अधिकार रहने पर भी असुविधा का कारण क्या हो सकता है—यह मैं नहीं समझ पा रहा हूँ !"

इसी परिप्रेक्ष में गणतंत्र की भी चर्चा होती रहती है। श्रीश्रीठाकुर ने इसको बहुत ही बोधगम्य ढंग से समझाया है।

"हम अपने शरीर की ही ओर देखें। प्रत्येक organ प्रत्येक organ को किस प्रकार help करता है। किसी organ की deficiency में शरीर का दूसरा organ उसे make up करने के लिये दौड़ पड़ता है मानो प्रत्येक अस्तित्व एक दूसरे पर निर्भर है और brain मानो सबों का नियन्त्रक है। इसी-लिये उनको उत्तमांग कहते हैं। शरीर के सभी organ separately एवं Jointly brain को सदैव nourish करने की चेष्टा करते हैं। Brain गुरु का कार्य कर रहा है। सबों को impulse देकर वह सबों को guide कर रहा है। किसी वास्तविक संघ, समाज या राष्ट्र के निर्माण में भी यही चाहिये। इस प्रकार की व्यवस्था के अभाव में कोई भी system खड़ा नहीं रह सकता। वह धंसेगा ही। इसीलिये Vox Populi vox dei (जनगण की आवाज भगवान की आवाज है) नहीं वरन् Vox expletori vox dei (पूरक पुरुष की आवाज ही भगवान की आवाज है)।

युगपुरुषोत्तम श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्र की संक्षिप्त जीवनी और विचार-धारा आज संसार के प्रति प्रत्येक के समक्ष परिवेषण करते हुये हमें एक लोकोत्तर आनन्द

की अनुभूति हो रही है जिसके बल पर हम सभी आशावान हो रहे हैं कि श्रीश्रीठाकुर के दिखाये हुये इस पवित्र पथ पर चलकर हम सभी अमृत का पान कर सकेंगे।

॥ वन्दे पुरुषोत्तमम् ॥

—*—

विधायक पुरुषोत्तम श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्रजी की संक्षिप्त जीवनी और विचार-धारा का परिवेषण इस पुस्तिका का उद्देश्य है।

हमारे व्यक्तिक, पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में परमप्रेममय श्रीश्रीठाकुर की अमृत-निष्यन्दी दिव्य-वाणी का परिपालन ही आज के इस समस्या-संकुल समाज का एकमात्र समाधान है। आइये! श्रीश्रीठाकुर के इन वेद-विदिप्त वचनों का समाज में परिवेषण और परिपालन कर हम मंगल के भागी बनें।